UNIT–1

संविधानवाद
CONSTITUTIONALISM

पाठ-संरचना (LESSON STRUCTURE)

1.0. उद्देश्य (Objective)
1.1 संविधानवाद के अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Constitutionalism)
1.2 संविधानवाद के तत्व (Elements of Constitutionalism)
1.3 संविधानवाद के आधार (Bases of Constitutionalism)
1.4 संविधानवाद और संविधान में अंतर (Difference between Constitutionalism and Constitution)
1.5 संविधानवाद की विशेषताएँ (Features of Constitutionalism)
1.6 संविधानवाद की विभिन्न अवधारणाएँ (Different concepts of Constitutionalism)
1.6.1 उदारवादी अवधारणा (Liberal Concept)
1.6.2 साम्यवादी अवधारणा (Communist Concept)
1.6.3 विकासवादी लोकतंत्र की अवधारणा (Developing democratic concept)
1.7 संविधानवाद का भविष्य (Future of Constitutionalism)
1.8 संविधानवाद की समस्याएँ एवं समाधान के उपाय (Problems of Constitutionalism and methods for the remedy)
1.9 निष्कर्ष (Conclusion)
1.10 अभ्यास के लिए प्रश्न (Questions for Exercise)
1.11 संदर्भ ग्रंथ (Surgested Readings)

1.0 उद्देश्य (Objecftives)

इस पाठ के अन्तर्गत आप संविधानवाद का अर्थ एवं विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं से अवगत होंगे तथा उसका विश्लेषण कर पायेंगे। अध्ययन क्रम में आप संविधानवाद के विभिन्न तत्वों एवं आधारों का विश्लेषण कर पायेंगे। साथ ही, संविधानवाद और संविधान में अंतर कर सकेंगे। इस पाठ के अध्ययन क्रम में आप संविधानवाद की विशेषताएँ एवं इनकी विभिन्न अवधारणाओं का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे। साथ ही, उदारवादी और समाजवादी प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे। इतना ही नहीं, संविधानवाद की समस्याओं से अवगत तो हो ही सकेंगे; इसका समाधान भी कर पायेंगे। तणा ही नहीं, संविधानवाद का भविष्य क्या है ? इसकी समीक्षा कर पायेंगे।

1.1 संविधानवाद का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Constitutionalism)

''व्यवस्थित परिवर्तन की जटिल प्रक्रियात्मक व्यवस्था ही संविधानवाद है।'' कार्ल जे.फ्रेड्रिक

संविधानवाद एक आधुनिक युगीन संकल्पना है, जो विधि और विनियमों द्वारा शासित राजनीतिक व्यवस्था की अपेक्षा करती है। यह व्यक्ति के स्थान पर विधि की सर्वोच्चता का समर्थक है। इसमें राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और सीमित (शक्तियों वाली) सरकार के सिद्धान्तों का समावेश होता है। इसका तादात्म्य 'विभक्त शक्तियों' की व्यवस्था के साथ किया जाता है।

औपचारिक दृष्टि से संविधानवाद का अर्थ है, ऐसा सिद्धान्त और व्यवहार, जिसके अन्तर्गत किसी समुदाय का शासन संविधान के अनुसार चलाया जाता है। प्रस्तुत संदर्भ में संविधान का अर्थ है, उन नियमों और प्रक्रियाओं का समुच्चय, जो शासन की संरचना और कार्यों का स्वरूप निर्धारित करती है, शासन के अंगों का विवरण देती है, उनकी शक्तियों और परस्पर संबंधों का निरूपण करती है, और यह भी निर्दिष्ट करती है कि इन्हें किन-किन सीमाओं और मर्यादाओं के भीतर कार्य करना होगा, ताकि शासन या उनका कोई अंग, किसी तरह की मनमानी न कर पाए। अर्थात् यह संविधान पर आधारित विचारधारा है, जिसका मूल अर्थ यही है, कि शासन संविधान में लिखित नियमों एवं विधियों के अनुसार संचालित हो तथा उसपर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रहे, जिससे वे मूल्य एवं राजनीतिक आदर्श सुरक्षित रहें; जिनके लिए समाज राज्य के बंधन को स्वीकार करता है। परन्तु संविधानवाद केवल संविधान के नियमों के अनुरूप प्रशासन संचालन ही नहीं है, वरन् उससे कुछ अधिक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि ''संविधानवाद निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन है, जिसमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताओं, आस्थाओं और मूल्यों की व्यवहार में उपलब्धि सम्भव होती है।'' दूसरे शब्दों में, संविधानवाद उस निष्ठा का नाम है जो मनुष्यों द्वारा संविधान में निहित शक्ति में विश्वास रखते हैं, जिससे सरकार व्यवस्थित बनी रहती है।

अत: संविधानवाद तभी सम्भव है, जब किसी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति विभाजन के द्वारा सरकारी कामों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके, ताकि सरकार नागरिकों की स्वतंत्रता और समानता में कोई कटौती न कर सके। कार्ल जे. फ्रेडरिक की भी मान्यता है कि–**''सभ्य शासन का आधार शक्ति विभाजन है और 'संविधानवाद' का यही अर्थ है।''**

वस्तुत: शासकों को संविधान द्वारा नियमित अधिकार क्षेत्र में रहने के लिए बाध्य करने की संवैधानिक नियंत्रण व्यवस्था को ही **'संविधानवाद'** कहते हैं।

संविधानवाद की परिभाषाएँ–संविधानवाद की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती, तथापि अग्रगण्य विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं–

पिनॉक और स्मिथ के अनुसार–''संविधानवाद केवल प्रक्रिया या लक्ष्य का नाम ही नहीं है, अपितु राजनीतिक सत्ता के सुविस्तृत समूहों, दलों और वर्गों पर प्रभावशाली नियंत्रणों, अमूर्त तथा व्यापक प्रतिनिध्यात्मक मूल्यों, प्रतीकों, अतीतकालीन परम्पराओं और भावी महत्वाकांक्षाओं से संबद्ध भी है।''

विलियम जी. ऐन्ड्रूज के मत में–संविधानवाद इन दो प्रकार के, सरकार व नागरिक तथा एक सरकारी सत्ता के दूसरी सरकारी सत्ता से संबंधों का संचालन मात्र है।''

कौरी तथा अब्राह्म के शब्दों में–''स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को **'संविधानवाद'** कहा जाता है।''

कार्टर एवं हर्ज के विचारानुसार–''मौलिक अधिकार तथा स्वतंत्र न्यायपालिका, प्रत्येक संविधानवाद की अनिवार्य और सामान्य विशेषता है।''

प्रो. जे. एस. रोडसैक के अनुसार–''धारणा के रूप में संविधानवाद का अर्थ है, अनिवार्य रूप से सीमित सरकार और शासित तथा शासन के ऊपर नियंत्रण की एक व्यवस्था।''

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है, कि शासक पर अंकुश रखने की शक्ति, स्वयं शासितों के हाथों में रहे। वस्तुतः संविधानवाद प्रजातांत्रिक भावना और व्यवस्था पर आधारित एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है, जो कानूनों और नियमों से संचालित होती है और जिनमें शक्तियों के केन्द्रीकरण और निरंकुश सम्प्रभुता के लिए कोई स्थान नहीं है तथा जिनमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताओं, आस्थाओं और मूल्यों की व्यवहार में उपलब्धि सम्भव होती है।

1.2 संविधानवाद के तत्व (Elements of Constitutionalism)

पिनोक तथा **स्मिथ** ने संविधानवाद के चार तत्वों की विवेचना की है। संविधानवाद के संदर्भ में ही यह समझना सम्भव है कि किसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधान, संविधानवाद का प्रतीक है अथवा नहीं। संक्षेप में इन तत्वों का विवेचन अग्रलिखित ढंग से किया जा सकता है–

1. संविधान में आधारभूत संस्थाओं की स्पष्ट व्यवस्था–संविधानवाद का महत्वपूर्ण तत्व यह है कि संविधान में आधारभूत संस्थाओं की स्पष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए। संविधान चाहे लिखित हो अथवा अलिखित, व विकसित, उसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के संगठन, कार्यों व उनके पारस्परिक संबंधों की स्पष्ट व्यवस्था, संविधानवाद की अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य है। संविधान में सरकार के विभिन्न स्तरों व अंगों की शक्तियों की व्याख्या ही नहीं हो, अपितु उनके पारस्परिक संबंधों का, उन पर लगी सीमाओं और उनकी कार्यविधि का, स्पष्ट उल्लेख भी होना चाहिए। अन्यथा संविधान, **'संविधानवाद'** की अभिव्यक्ति का साधन नहीं बन सकता। वस्तुतः वर्तमान राज्यों में संविधान की सजीवता का मापदण्ड ही यह है, कि संविधान कहां तक शासन की आधारभूत संस्थाओं–व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा राजनीतिक दलों, समूहों एवं प्रशासकीय सेवाओं–की समुचित व्यवस्था तथा स्थापना करता है।

2. संविधान राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक–संविधानवाद का एक आधारभूत तत्व यह है कि, संविधान को राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक होना चाहिए। **पिनॉक** तथा **स्मिथ** तो प्रतिबन्धों को संविधानवाद का मूलमंत्र मानते हैं। वस्तुतः प्रत्येक राज्य में सरकार को संवैधानिक बनाये रखने के लिए उनपर किसी न किसी प्रकार का नियंत्रण व्यवस्था के अधीन होना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि संविधान स्पष्ट रूप से सरकार की शक्तियों का सीमांकन करे। इससे सरकार का कार्यक्रम निश्चित हो जाता है और शासित, शासकों की स्वेच्छाचारी कार्यों से बच जाता है तथा शासक केवल विधि के अनुरूप ही संचालित होता है। वस्तुतः प्रत्येक राज्य में सरकार को संवैधानिक बनाए रखने के लिए, उनपर किसी न किसी प्रकार की नियंत्रण, व्यवस्था के अधीन होना आवश्यक है। ये नियंत्रण निम्नलिखित हैं–

(क) विधि के शासन की स्थापना

(ख) मौलिक अधिकारों की व्यवस्था

(ग) शक्तियों का पृथक्करण एवं विकेन्द्रीकरण और

(घ) सामाजिक परिस्थितियों को बनाये रखने की व्यवस्था।

उपर्युक्त नियंत्रणों के द्वारा नागरिक और सरकार दोनों ही अपने अधिकारों एवं कार्यों में सीमित हो जाते हैं और तब, संविधान समाज के आदर्शों, आस्थाओं और राजनीतिक मूल्यों की प्राप्ति का साधन बन जाता है।

3. संविधान विकास का निदेशक–संविधान के लिए आवश्यक है कि वह समयानुकूल बने। समय, परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों और आदर्शों में भी हेर-फेर होता रहता है। इन नवीन आस्थाओं को ग्रहण करने की क्षमता संविधान में होनी चाहिए। अगर किसी राज्य का संविधान ऐसी व्यवस्था नहीं रखता है, तो परिवर्तित व अप्रत्याशित परिस्थितियों में वह समाज की बदलती हुई मान्यताओं का प्रतीक नहीं रह जाएगा। अत: यह आवश्यक है कि संविधान, भविष्य के सम्भावित विकासों का श्रेष्ठतम साधन भी हो। कोई भी संविधान जो वर्तमान से आगे, समाज के भावी विकास की योजना व साधन नहीं बनता, वह शीघ्र ही समाज की आधारभूत मान्यताओं से विलग होता जाता है। ऐसा संविधान समाज की आकांक्षाओं की प्राप्ति का साधन न बनकर, उसका बाधक बन जाता है। यह अवस्था संविधानवाद की समाप्ति का प्रारम्भ है।

4. संविधान, राजनीतिक शक्ति का संगठक–संविधान केवल सरकार की सीमाओं की स्थापना ही नहीं करता, अपितु सरकार की विभिन्न संस्थाओं में शक्तियों का वितरण भी करता है। संविधान यह व्यवस्था भी करता है, कि सरकार के कार्य, अधिकार युक्त रहे और स्वयं सरकार भी वैध रहे। अगर कोई संविधान सरकार के कार्यों को अधिकार युक्त व स्वयं सरकार को वैध नहीं बनाता, तो ऐसी सरकार व संविधान अधिक दिनों तक स्थाई नहीं रह सकते तथा ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में 'संविधानवाद' राजनीतिक शक्ति का संगठक नहीं रहता। इससे स्पष्ट है कि संविधान द्वारा प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति का संगठन होना आवश्यक है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि संविधानवाद के उपर्युक्त चारों तत्व संविधान में अनिवार्य रूप से निहित होना चाहिए। यदि किसी राज्य के संविधान में 'संविधानवाद' के इन तत्वों का समावेश नहीं है, तो वह संविधान, संविधानवाद की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं होगा और ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधानवाद सम्भव नहीं हो पाएगा।

1.3 संविधानवाद के आधार (Bases of Constitutionalism)

आज प्राय: विश्व के प्रत्येक शासन व्यवस्था में सरकार के कार्यों का विरोध, आम बात हो गई है और सरकार अपने इस विरोध को रोकने के लिए दमन शक्ति का प्रयोग करती है। लेकिन सरकार को इस दमनकारी शक्तियों का प्रयोग विशिष्ट परिस्थितियों में ही करना पड़ता है। आमतौर पर देशद्रोह, क्रान्ति या विद्रोह की स्थिति को दबाने के लिए ही, सरकार अपनी दमनकारी शक्तियों का प्रयोग करती है। सामान्य

परिस्थितियों में जनता में सहमति या मतैक्य एवं एकता की भावना देखी जाती है। ऐसी परिस्थितियों में सरकार के विरोध का सवाल ही नहीं उठता। फलतः सरकार भी, अपनी दमनकारी शक्तियों का प्रयोग नहीं करती है। जनता में जितना मतैक्य या सहमति होगी, वहाँ शक्ति का प्रयोग उतना ही कम होगा। अधिकतम सहमति, संविधानवाद की पूर्व शर्त मानी जाती है। मतैक्य जितना ही पूर्ण सहमति या समर्थन के ध्रुव के समीप होगा, संविधानवाद उतना ही ठोस और व्यावहारिक रूप को धारण करेगा। **विलियम ऐण्ड्रूज** ने चार प्रकार के मतैक्य का उल्लेख किया है, जिन्हें संविधानवाद का आधार कहा जाता है। ये मतैक्य निम्नवत् हैं–

1. संस्थाओं के ढाँचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य–प्रसिद्ध विद्वान **ऐण्ड्रूज** की मान्यता है कि राजनीतिक संस्थाओं के ढाँचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य, संवैधानिक सरकार के लिए विशेष महत्व रखता है। 'संविधानवाद' के लिए यह आवश्यक है कि संस्थाओं की प्रकृति पर जनता में सामान्य सहमति हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो जनता सोचेगी कि सरकारी तंत्र जनविरोधी है, इससे जनता का हित होनेवाला नहीं है। फलतः विरोध की भावना प्रबल होगी।

2. विधि का शासन–नागरिकों में इस बात पर सहमति पाई जानी चाहिए; कि शासन के संचालन का आधार विधि का शासन होना चाहिए। कुछ विशेष परिस्थितियों में विधि के शासन के आधार की अवहेलना की जा सकती है। उदाहरण के लिए 1933 में **जर्मनी में 'हिटलर' को** तथा 1958 ई० में **फ्रांस में 'दि गॉल' को** संविधानवाद के बन्धनों से छूट दी गई थी। वस्तुतः यह छूट संविधानवाद को नष्ट करने के लिए नहीं, वरन् उसकी रक्षा के लिए दी गई थी।

3. समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति–संविधानवाद के विकास के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक समाज के नागरिकों में, समाज के लिए सामान्य उद्देश्य पाई जाए। यदि समाज में सामान्य उद्देश्य पर सहमति नहीं होती है, तो राजनीतिक व्यवस्था में तनाव तथा खिंचाव उत्पन्न हो जाता है। फलतः इस स्थिति में, सम्पूर्ण संवैधानिक ढाँचा ही अस्त-व्यस्त हो सकता है।

4. गौण लक्ष्यों और विशिष्ट नीति प्रश्नों पर सहमति–संविधानवाद की व्यावहारिक में उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि गौण लक्ष्यों व विशिष्ट नीति प्रश्नों पर समाज में सहमति हो। यदि इन पर सहमति नहीं होती, तो राजनीतिक व्यवस्था में अनावश्यक तनाव व संदेह उत्पन्न हो सकते हैं, जिसमें संविधानवाद के सम्पूर्ण भवन में ही दरारें पड़ने लगेंगी, जो अन्ततः उनको कमजोर कर धराशायी करने का कारण बनेगी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त चारों आधार, संविधानवाद के लिए आवश्यक हैं। इन्हीं से संविधानवाद का विकास होगा तथा इसकी व्यावहारिक उपलब्धि होती है। यदि किसी राजनीतिक व्यवस्था में ये आधार उपलब्ध न हो, तो संविधानवाद की व्यवस्था अधिक दिनों तक टिक नहीं पायेगी। दीर्घकालीन व सदियों से स्थापित संविधानवाद भी इन आधारों के अभाव में समाप्त हो जाता है। समाज में इन चारों आधारों पर असहमति ठोस संविधानवाद की समाप्ति का कारण बन जाती है। वस्तुतः इन आधारों का संविधानवादी व्यवस्था में आधारभूत योगदान है।

1.4 संविधानवाद और संविधान में अंतर (Difference between Constitutionalism and Constitution)

संविधानवाद प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित एक ऐसी राजीतिक प्रणाली या व्यवस्था है, जो कानूनों और नियमों द्वारा संचालित होती है। इसमें शक्तियों के केन्द्रीकरण और निरंकुश सम्प्रभुता का कोई स्थान नहीं। हमें बहुधा यह गलतफहमी हो जाती है कि 'संविधान' और 'संविधानवाद' दोनों एक ही चीज है। वास्तव में ये दोनों विचार अपनी प्रकृति और स्वरूप की भिन्नता के कारण एक-दूसरे के निकट दिखाई पड़ते है। ऐसा लगता है मानो ये, एक-दूसरे के पर्याय हैं, लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। एक-दूसरे के साथ जुड़े होने के बावजूद, ये अलग-अलग हैं। इन दोनों में पर्याप्त अंतर है। यथा–

(i) सांविधानिक शासन का आधार व सार दोनों ही 'संविधानवाद' है। संविधानवाद आवश्यक रूप से एक प्रजातांत्रिक परम्परा का पोषक है, जबकि संविधान सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का क्षेत्र है।

वस्तुत: **संविधान** संगठन का प्रतीक है, जबकि **संविधानवाद** विचारधारा का। संविधान में सरकार, व्यक्ति और सामाजिक संगठनों के संबंधों का वर्णन होता है। दूसरी ओर, संविधानवाद में देश के मूल्य और विश्वास तथा आदर्श सन्निहित होते हैं, जिसके योग से विचारधाराएँ जन्म लेती हैं वही विचार की प्रतीक कहलाती है।

एक वाक्य में–

(i) संविधानवाद, एक दर्शन है और संविधान उस दर्शन की अभिव्यक्ति।

(ii) संविधान प्राय: निर्मित होते हैं, दूसरी तरफ संविधानवाद हमेशा विकास का परिणाम रहा है।

(iii) संविधानवाद जबकि लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्रधानता पर बल देता है। संविधान उन लक्ष्यों और उद्देश्यों तक पहुँचने की सुव्यवस्था है। अर्थात् संविधान **साध्यमुक्त** धारणा है, जबकि संविधानवाद **साध्ययुक्त**।

(iv) संविधानवाद अनेक देशों में एक जैसा हो सकता है। संविधानवाद में समानता के बावजूद हर देश का संविधान अलग-अलग होता है।

(v) संविधान का औचित्य विधि के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है, जबकि संविधानवाद में आदर्शों के औचित्य का प्रतिपादन मुख्यत: विचारधारा के आधार पर होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि संविधान और संविधानवाद में घनिष्ट संबंध होते हुए भी, पर्याप्त अंतर है। इन दोनों की उपस्थिति पारस्परिक संबंधों पर आधारित होती है। संविधान, संविधानवाद की विकसित परम्परा का प्रतिफल है। संविधानवाद सदैव एक प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण का पोषक है, जबकि संविधान सदैव प्रजातांत्रिक हो, ऐसा आवश्यक नहीं है।

1.5 संविधानवाद की विशेषताएँ (Features of Constitutionalism)

संविधानवाद प्रजातांत्रिक भावना और व्यवस्था पर आधारित एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है, जो कानूनों एवं नियमों द्वारा संचालित होती है। इसके तहत शक्तियों के केन्द्रीकरण और निरंकुश सम्प्रभुता के

लिए कोई स्थान नहीं है। संविधानवाद किसी भी देश या समाज विशेष का हो, उसकी कुछ सामान्य विशिष्टताएँ होती हैं, जो कम या अधिक मात्रा में हर संविधानवाद में परिलक्षित होती हैं। अर्थात् अपनी प्रजातांत्रिक प्रकृति और राज्य सापेक्ष विचारधारा के कारण संविधानवाद की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। संविधानवाद की धारणा को और अधिक अच्छी तरह समझने के लिए यह उपर्युक्त होगा, कि उसकी कुछ कतिपय सामान्य विशेषताओं पर एक नज़र डाला जाये।

1. संविधानवाद, मूल्य सम्बद्ध अवधारणा है–संविधानवाद की विशेषताओं में सबसे पहली विशेषता यह कही जा सकती है कि 'संविधानवाद', संविधान के ही अस्तित्व का दूसरा नाम है। संविधानवाद का संबंध राष्ट्र के जीवन दर्शन से है। यह उन मूल्यों, विश्वासों और राजनीतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है, जो राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को प्रिय हैं तथा प्रत्येक राष्ट्र का जीवन आधार होते हैं। इसी पर संविधानवाद की नींव टिकी हुई है।

2. 'संविधानवाद' संस्कृति से सम्बद्ध अवधारणा है–संविधान की धारणा प्रत्येक स्थान विशेष की संस्कृति से संबंधित है, क्योंकि प्रत्येक स्कान की आदर्श, मूल्य एवं विचारधाराएँ इस देश की संस्कृति की ही उपज है। अर्थात् किसी भी देश का मूल्य, आदर्श एवं विचारधारा वहाँ की संस्कृति से जुड़े हुए होते हैं, इसलिए संविधानवाद, प्राचीन परम्पराओं तथा भविष्य की आशाओं का प्रतीक है। यह विस्तृत संस्कृतियों का सूचक माना जाता है।

3. संविधानवाद, गत्यात्मक अवधारणा है–संविधानवाद में स्थायित्व के साथ गत्यात्मकता भी पाई जाती है। इसी कारण यह प्रगति का बाधक नहीं, अपितु साधक बना रहता है। चूँकि समय परिवर्तन के साथ मूल्यों में परिवर्तन आता है तथा संस्कृति विकसित होती है। अतः संविधान भी स्थान, समय और परिस्थितियों के अनुसार, अपना स्वरूप बदलती रहती है। यह पुराने मूल्यों एवं आदर्शों की संकेत तो है ही, साथ ही साथ यह नये मूल्यों एवं विचारों के निर्माण प्राप्ति का भी साधन है। इसलिए इसे गतिशील या गत्यात्मक अवधारणा कहा जाता है।

4. संविधानवाद समभागी अवधारणा है–एक राष्ट्र के मूल्य, विश्वास, राजनीतिक आदर्श एवं संस्कृति के प्रति अन्य देशों में भी निष्ठा हो सकती है। अतः कई देशों के राजनीतिक आदर्श, आस्थाएँ और मान्यताएँ समान हो सकती हैं। ऐसे देशों में संविधानवाद आधारभूत समानताएँ रखता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि संविधानवाद एक समभावी अवधारणा है।

5. संविधानवाद साध्य से संबंधित अवधारणा है–संविधानवाद मूलतः साध्यों से संबंधित अवधारणा है, किन्तु यह साधनों की पूर्णतया अवहेलना नहीं कर सकता है। यद्यपि प्रजातंत्र के साध्य के लिए अनेक अवसरों पर साधन के रूप में प्रयुक्त होती है, फिर भी संविधानवाद मूलतः लक्ष्यों का ही सूचक है।

6. संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है–सामान्य परिस्थितियों में प्रत्येक देश के अथवा लोकतांत्रिक समाज के मूल्यों और कर्तव्यों का संविधान में स्पष्ट उल्लेख किया जाता है। मूल्यों एवं राजनीतिक आदर्शों से युक्त संविधान, संविधानवाद की आधारशिला है, जिस पर संविधानवाद की नींव टिकी रहती है।

7. संविधान, कानून के शासन पर आधारित अवधारणा है–संविधानवाद में व्यक्ति तथा व्यक्तियों के शासन की अपेक्षा कानून का शासन मुख्य है, जिसे 'Rule of law' के नाम से जाना जाता है।

8. इसकी अगली विशेषता यह है कि यह **'अधिनायक विहीन राज्य'** में ही सम्भव है। इसलिए इसकी अनिवार्य विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत मूल अधिकार और स्वतंत्र न्यायपालिका को प्रधानता दी जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हर संविधानवाद में उपर्युक्त सामान्य विशिष्टताएँ विद्यमान होती हैं। ये विशेषताएँ हर देश में कम या अधिक मात्रा में संविधानवाद के आधार के रूप में पाई जाती हैं। एक संविधानवाद से दूसरे संविधानवाद में इन विशिष्टताओं की भिन्नता केवल मात्रा की ही होती है, प्रकार की नहीं।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह समाज के विकास के साथ परिवर्तनशील समाज के जीवन दर्शन के मूल्यों से सापेक्षता बनाते हुए, विकसित होती हुई, प्रजातांत्रिक अवधारणा है, जो संविधान के विभिन्न उपबन्धों को, व्यक्ति के हितों की दिशा में एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है।

1.6 संविधानवाद की विभिन्न संकल्पनाएँ या अवधारणाएँ (विचारधाराएँ) (Different concepts of Constitutionalism)

संविधानवाद एक ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता है, जिसमें शक्तियों का विभाजन होता है तथा नियंत्रण व संतुलन की पद्धति होती है, ताकि सरकार उत्तरदायी बनी रहे। इसमें यह भी अपेक्षा की जाती है कि पद्धति में पर्याप्त तकनीकों और प्रक्रियाओं की व्यवस्था की जाए, जिनसे व्यवस्थाबद्ध परिवर्तन किया जा सके। इसका अभिप्राय किसी विशेष प्रकार की सरकार से नहीं है, यद्यपि इस तथ्य के विचार से इसे लोकतांत्रिक सरकार के लिए आवश्यक कहा जा सकता है कि, यह सरकार की शक्तियों को सीमित करता है और **'शक्ति के दुरुपयोग'** पर नियंत्रण रखता है। अर्थात् संविधानवाद एक गतिशील और विकासशील विचारधारा है, जो संविधान से संबंधित होकर उसकी मान्यताओं और व्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। यह विचारधारा राजनीतिक मूल्यों के प्रति सापेक्ष और राजनीतिक संस्कृति के जीवन मूल्यों से प्रभावित है तथा उन्हें प्रभावित करती है।

पिनॉक तथा **स्मिथ** और **कार्ल जे. फ्रेड्रिक** तथा कुछ अन्य पाश्चात्य विचारकों का मानना है कि संविधानवाद की केवल एक ही धारणा है। उनके अनुसार उदार लोकतंत्र की अवधारणा ही संविधानवाद की वास्तविक व सही अवधारणा है। किन्तु यह मान्यता सही नहीं है। यदि संविधानवाद राजनीति, समाज के आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं का बोध कराता है, तो ये आदर्श विभिन्न राष्ट्रों में अलग-अलग भी हो सकते हैं। अत: भिन्न-भिन्न संस्कृति वाले देशों में, संविधानवाद की तीन अवधारणाएँ भिन्न हो सकती हैं। अत: मोटे तौर पर उद्देश्यों तथा उद्देश्य प्राप्ति के साधनों के आधार पर संविधानवाद की तीन अवधारणाएँ हो सकती हैं–

1.6.1 उदार लोकतंत्र की अवधारणा (Liberal Democratic Concept)

इसे पाश्चात्य संविधानवाद के नाम से भी जाना जाता है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया जाता है। इसके अनुसार, संविधानवाद साध्य एवं साधन दोनों है। यह मूल्य-भारित और मूल्य युक्त भी है, इसके आयाम मानकीय है और आनुभाविक भी। संविधानवाद के पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार, यह केवल सरकार के अंगों के संगठन एवं शक्तियों का ही वर्णन मात्र नहीं, वरन् स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा अधिकारों का भी यथोचित महत्व दिया जाता है। यह इस तथ्य पर विचार नहीं करती है कि संविधान लिखित है, अथवा अलिखित; क्योंकि ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के बावजूद, वहाँ सुदृढ़ संविधानवादी परम्पराओं को मान्यता प्राप्त है। यह उदार लोकतांत्रिक दर्शन का पोषक है। इसके तहत व्यक्ति की साधना को अधिक महत्व दिया जाता है। इस तरह की अवधारणा पश्चिम के पूँजीवादी लोकतांत्रिक राज्यों और अमेरिका में प्रचलित है।

पाश्चात्य संविधान के तत्व या आधार–उदार लोकतंत्रों से संबंधित संविधानवाद के मुख्यत: दो आधार या तत्व हैं–

(i) दार्शनिक आधार, और

(ii) संस्थागत आधार।

(i) दार्शनिक आधार–संविधान की पाश्चात्य अवधारणा के दार्शनिक आधार राजनीतिक व्यवस्थाओं के उद्देश्यों से संबंधित होते हैं। हर राजनीतिक व्यवस्थाओं में कुछ मूलभूत लक्ष्य होते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिए वे प्रयत्नशील रहते हैं। पाश्चात्य संविधानवाद के दार्शनिक आधार इस प्रकार हैं–

(क) व्यक्ति की स्वतंत्रता,

(ख) राजनीतिक समानता,

(ग) सामाजिक तथा आर्थिक न्याय, और

(घ) लोक कल्याण की साधना।

(ii) संस्थागत आधार–संविधानवाद दार्शनिक आधारों को व्यवहार में उपलब्ध कराने की व्यवस्था को ही संस्थागत आधार कहा जाता है। उपर्युक्त दार्शनिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक शक्ति को साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके लिए राजनीतिक शक्ति को व्यक्तियों के स्थान पर संस्थाओं में निहित किया जाता है। शक्ति को संस्थाओं में निहित करके दोहरा उद्देश्य प्राप्त किया जाता है–

प्रथम, सरकार को सीमित रखा जाता है, तथा

द्वितीय, सरकार को उत्तरदायी बनाया जाता है।

सरकार को सीमित करने वाला तथा उसे उत्तरदायी रखने की सभी संस्थागत व्यवस्थाएँ, निम्न अवस्थाओं में ही प्रभावशाली बन सकती हैं–

(अ) इसके लिए सरकार लोकतांत्रिक ढंग से गठित हो,

(ब) सरकार प्रतिनिध्यात्मक हो, तथा

(स) बहुल एवं खुली सामाजिक व्यवस्था हो।

राजनीतिक शक्ति को नियंत्रित और उत्तरदायी बनाये रखने के लिए पाश्चात्य समाजों में अनेकों संस्थागत व्यवस्थाएँ की जाती हैं, जैसे–

(क) विधि का शासन,

(ख) मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का प्रावधान,

(ग) राजनीतिक शक्तियों का विभाजन,

(घ) स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका।

पाश्चात्य संविधान में सरकार को उत्तरदायी बनाने की व्यवस्था–पाश्चात्य संविधानवाद में राजनीतिक उद्देश्यों को व्यवहार में प्राप्त करने के लिए, राजनीतिक शक्ति को एकाधिकार से बचाव की व्यवस्था करने के प्रतिस्पर्द्धात्मक राजनीति में निम्नलिखित संस्थागत व्यवस्थाएँ होती हैं–

(i) नियमित चुनाव,

(ii) राजनीतिक दलों और समूहों की स्थापना का वातावरण,

(iii) समाचार पत्रों की स्वतंत्रता,

(iv) लोकतंत्र की प्रभावशीलता,

(v) सामाजिक बहुलवाद की विद्यमानता।

ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, स्विट्जरलैंड आदि देशों में उपर्युक्त तत्व वहाँ के संविधानों में मौजूद हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ये संविधान, संविधानवाद की 'उदार' लोकतंत्रीय अवधारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

देखा जाए तो 'उदारवादी संविधान' अपने-आप में सामाजिक परिवर्तन की कोई योजना प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि वह केवल राजनीतिक प्रक्रिया के प्रबंध की व्यवस्था प्रस्तुत करता है, चाहे वह संविधान संसदीय ढंग का हो या अध्यक्षीय ढंग का, चाहे वह एकात्मक हो या संघात्मक। इसमें होनेवाली सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप और स्तर राजनीतिक शक्तियों की परस्पर क्रिया का परिणाम होता है, और ये शक्तियाँ समाज की आर्थिक और सांस्कृतिक नींव पर टिकी होती हैं।

1.6.2 संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा (Communist Concept)

संविधानवाद की साम्यवादी संकल्पना एक विशेष विचारधारा के सिद्धान्त पर आधारित है। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा है, जिसके अनुसार, राज्य को वर्ग संस्था समझा जाता है, जिसके अस्तित्व का कारण एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर शोषण और दमन का उपकरण होना है, जिसके द्वारा **'पूंजीपति वर्ग', 'सर्वहारा वर्ग'** या **'मजदूरों'** का शोषण करते हैं। यह संकल्पना सोवियत या साम्यवादी धारणा से संबंधित है। ऐसे देश में संविधान अपने आप में साध्य नहीं है, यह तो **''वैज्ञानिक समाजवाद''** की विचारधारा को अमली जामा पहनाने का एक साधन है। यह तो **'सर्वहारा की तानाशाही'** के हाथ में एक उपकरण है, जो वर्गविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है और जो अन्त में राज्यविहीन अवस्था में बदल

जायेगा। संविधान रखने का तात्पर्य, किसी सरकार की शक्तियों को सीमित करना नहीं बल्कि, उन्हें इतना अधिक विशद् और व्यापक बनाना है कि **'मजदूरों के राज्य'** के आदर्श को प्राप्त किया जा सके और एक 'नए प्रकार का राज्य' अस्तित्व में आ जाए। ऐसे देश में संविधान का वास्तविक उद्देश्य सबके लिए स्वतंत्रता, समता, न्याय और अधिकार सुनिश्चित करना ही नहीं बल्कि, यह देखना भी है, कि समाजवाद के शत्रुओं को कैसे नष्ट किया जाए और एक नई व्यवस्था की स्थापना की जाए।

'सरकार' और 'राजनीतिक शक्ति' के बारे में साम्यवादियों की धारणा पाश्चात्य उदारवादी धारणा से सर्वथा भिन्न है। साम्यवादी, 'सरकार' को पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली मानते हैं, जो 'धनिक-वर्ग' की 'गरीब वर्गों' से रक्षा का ही कार्य करती है। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति है, जिसके हाथ में आर्थिक शक्ति होगी, उसी के हाथ में राजनीतिक शक्ति भी होगी, अर्थात् वही शक्ति के धारक एवं संचालक होंगे।

साम्यवादी, सरकार को सीमित एवं नियंत्रित करने के पक्ष में हैं। परन्तु वे पाश्चात्य जगत के नियंत्रण साधनों को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि वे साधन आर्थिक शक्ति को नियंत्रित करने में अक्षम हैं। इसलिए वे ऐसे नियंत्रणों पर विश्वास करते हैं, जो समाज की आर्थिक शक्ति को नियंत्रित कर सके तथा ऐसी आर्थिक स्थिति सम्पन्न कर सके, जिससे कि यह शक्ति (आर्थिक) किसी वर्ग विशेष के पास न रहकर समाज में निहित हो जाए। ये ऐसे समाज की स्थापना चाहते हैं, जो वर्गरहित या राज्य रहित हो और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक उत्पादन में सहयोगी हो तथा हर व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। वे आर्थिक शोषण से मुक्त समाज की स्थापना चाहते हैं।

अत: संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा का स्पष्टीकरण साम्यवाद की आधारभूत मान्यताओं के संदर्भ में ही किया जा सकता है। ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) सामाजिक जीवन में व्यक्ति के आर्थिक पहलू की सर्वोच्चता,

(ii) समाज में आर्थिक शक्ति से सम्पन्न वर्ग का प्रभुत्व,

(iii) आर्थिक शक्ति के अधीन राजनीतिक शक्ति।

आर्थिक शक्ति को सार्वजनिक सत्ता के अधीन बनाने के लिए साम्यवादी समाजों में प्राय: निम्नलिखित व्यवस्थाओं को प्रमुखता (समर्थन) दी जाती है–

(क) उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व,

(ख) सम्पत्ति का समान वितरण, और

(ग) साम्यवादी दल का एकाधिकार (नेतृत्व)।

समीक्षा–यद्यपि समाजवादी व्यवस्था केवल मजदूर-किसान-सैनिक वर्ग के अधिकारों को मान्यता देती है और केवल समाजवादी विचारधारा को ही स्वीकार करती है। इतना ही नहीं उसमें विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति बहुत हद तक सीमित कर दी जाती है–विशेषत: वहाँ जहाँ पूँजीवाद का समर्थन निषिद्ध होता है, तथापि इस व्यवस्था (साम्यवादी) में उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व तथा सम्पत्ति का समान वितरण ऐसी आधारभूत व्यवस्थाएँ हैं, जो राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग को प्रभावशाली

ढंग से रोकती है तथा संविधानवाद के, आदर्शों को सभी नागरिकों को उपलब्ध कराती है। साथ ही यही व्यवस्थाएँ उसे पाश्चात्य व्यवस्था से भिन्नता प्रदान करती हैं।

उदारवादी और समाजवादी सांविधानिक प्रणालियाँ–एक तुलनात्मक अध्ययन
(सारणी द्वारा)

विवेच्य-विषय	उदारवादी सांविधानिक प्रणालियाँ	समाजवादी सांविधानिक प्रणालियाँ
दार्शनिक आधार	उदारवादी चिंतन, अर्थात् राजनीति परस्पर विरोधी हितों के सामंजस्य का क्षेत्र है।	मार्क्सवादी चिंतन, अर्थात् राजनीति धनवान और निर्धन वर्गों के संघर्ष का क्षेत्र है।
उपयुक्त राजनीतिक व्यवस्था	उदार लोकतंत्र जो मुख्यत: जन प्रतिनिधियों के माध्यम से सक्रिय होता है।	'सर्वहारा का अधिनायक तंत्र' जो मुख्यत: जन सहभागिता के माध्यम से सक्रिय होता है।
उपयुक्त आर्थिक व्यवस्था	मुक्त बाजार समाज-जिसमें उत्पादन के प्रमुख साधनों के निजी स्वामित्व पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।	आर्थिक नियोजन–जिसमें उत्पादन के प्रमुख साधनों को सार्वजनिक स्वामित्व में रखा जाता है।
अधिकारों की स्थिति	नागरिक स्वतंत्रताओं की प्रधानता।	सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की प्रधानता।
सार्वजनिक निर्णयन की विधि	निर्णयन की प्रक्रिया निर्धारित कर दी जाए; सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य अपने-आप उभरकर सामने आयेंगे।	सामाजिक-आर्थिक लक्ष्य निर्धारित कर दिए जाएँ–उनकी सिद्धि की प्रक्रिया में आवश्यक समायोजन किया जा सकता है।
विभिन्न हितों की स्थिति	समाज के सब वर्गों के हितों का समान महत्व।	कामगर वर्ग के हितों की वरेण्यता।
राजनीतिक दलों की स्थिति	दलों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं।	साम्यवादी दल का एकाधिकार।
प्रबन्ध का चरित्र	परस्पर विरोधी हितों के सामंजस्य का स्थायी प्रबंध।	वर्गहीन समाज के उदय तक का अस्थायी प्रबन्ध।

1.6.3 संविधानवाद का विकासवादी लोकतंत्र की अवधारणा (Developing democratic concept of Constitutionalism)

विकासशील देशों में संविधानवाद अभी तक अस्थायित्व के दौर से गुजर रहा है। अभी तक ये अपनी कोई पहचान नहीं बना पाये हैं। ये अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूपों में विद्यमान हैं। यहाँ संविधानवाद प्रयोगात्मक अवस्था में है। कुछ देश पाश्चात्य संविधान से प्रभावित हैं, तो कुछ देश साम्यवादी व्यवस्था से, तो कुछ देशों में सैनिक शासन की स्थापना की गई है, तो वहीं कुछ देशों में मिश्रित विचारधाराओं का प्रभाव देखा गया है। जैसे–भारत एक ऐसा ही देश है जहाँ मिश्रित संविधान अपनाया गया है। कहने का तात्पर्य कि विकासशील देशों का संविधान विकसित देशों के संविधानवाद से सर्वथा भिन्न है।

विकासशील लोकतांत्रिक देशों की समस्याएँ–विकासशील लोकतांत्रिक समाजों में संविधानवाद की विशेषताओं के उल्लेख के पूर्व इनकी कुछ समस्याओं का जिक्र आवश्यक प्रतीत हो रहा है। विकासशील देशों की अनेक राजनीतिक समस्याएँ हैं, यथा–

(i) राजनीतिक स्थायित्व की समस्या,

(ii) आर्थिक विकास की समस्या,

(iii) सुरक्षा की समस्या,

(iv) राजनीतिक सत्ता की वैधता या औचित्य की समस्या,

(v) सामाजिक-सांस्कृतिक राज्य की समस्या,

(vi) आधुनिकीकरण में रुकावट की समस्या,

(vii) राजनीतिक संरचना विकल्पों के चुनाव की समस्या आदि जिसके चलते संविधानवाद के आधार निश्चित नहीं हो पाये हैं।

राजनीतिक संरचना, विकल्पों के चुनाव की समस्या आदि जटिलता के बावजूद, विकासशील देशों में संविधानवाद स्वरूप ले रहा है और ये विकास की ओर अग्रसर हैं। विकासशील देशों में कुछ अपवादों को छोड़कर सांविधानिक राज्य, जनता की स्वतंत्रता और समानता के प्रति आस्था दिखाई पड़ती है।

विकासशील देशों में उपर्युक्त समस्याओं के बावजूद संविधानवाद में कुछ प्रमुख लक्षण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे हैं, जैसे–

(i) संविधानवाद निर्माण की अवस्था में है,

(ii) संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है,

(iii) संविधानवाद प्रवाह के दौड़ में है, और

(iv) संविधानवाद दिशारहित चरण में है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संविधानवाद की विकासशील राज्यों की अवधारणा में साध्य तो, पाश्चात्य अवधारणा के समान है, स्वतंत्रता, राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा लोक कल्याण की साधना के ही है। परन्तु साधनों की दृष्टि से यह अवधारणा साम्यवादी विचारधारा के समीप लगती है। निष्कर्ष में, होवार्ड रीगिन्स के कथन का उल्लेख करना विकासशील राज्यों के संविधानवाद का सही चित्रण करता है।

रीगिन्स के शब्दों में–''राज्य नये हैं और राजनीतिक खेल के नियम प्रवाह में है, इसलिए संविधानवाद अभी तक सुस्थिर नहीं हो सका है।''

निष्कर्ष–संविधानवाद की विभिन्न अवधारणाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि–''संविधानवाद का चिरस्थायी मूल्य चाहे वह पाश्चात्य हो या साम्यवाद, विकसित देशों का हो या विकासशील देशों का, पूर्णतया स्थापित हो अथवा स्थापना के प्रयत्न तक सीमित रहा हो, उसकी प्राप्ति की प्रक्रियाओं व संस्थात्मक व्यवस्थाओं के साधनों से कहीं दूर पाया जाता है। यह सामाजिक व्यवस्था के उन नैतिक उद्देश्यों

में, जिनकी यह रक्षा करता है, विचारधाराओं के उन मूल्यों में, जो इसे प्रिय है तथा शासकों के उस शील में, जिसे यह स्थायित्व प्रदान करता है, पाया जाता है।''

1.7 संविधानवाद का भविष्य (Future of Constitutionalism)

संविधानवाद की विभिन्न अवधारणाओं के विवेचन से यह प्रश्न उठता है कि क्या संविधानवाद का भविष्य उज्ज्वल है ? **सी. एफ. स्ट्राँग** के अनुसार, ''संविधानवाद के विकास में अनेक उतार-चढ़ाव आये हैं।'' प्रथम विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद, राजनीतिक संविधानवाद का भविष्य बड़ा उज्ज्वल प्रतीत होता था। किन्तु यूरोप के बहुत से भागों में संवैधानिक शासन के विरुद्ध हुई प्रतिक्रियाओं के कारण आशावाद की लहर धूमिल पड़ गई। रूस में साम्यवादी क्रान्ति ने उदार शासन को हिंसात्मक साधनों से समाप्त कर दिया। उसके बाद इटली में फासिस्ट विद्रोह, जर्मनी में नाजी विप्लव, स्पेन में जनरल फ्रेन्को की विजय और पोलैण्ड, रूमानिया, यूनान तथा पूर्वी यूरोप के अन्य राज्यों में अर्द्ध-अधिनायकवाद का प्रादुर्भाव हुआ तथा संविधानवाद की जड़ें उखड़ सी गईं। इसके बावजूद, पाश्चात्य जगत के अन्य राज्यों में संविधानवाद दृढ़ता से बना रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की स्थिति प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की स्थिति से बिल्कुल भिन्न हो गई। पश्चिमी यूरोप में जहां संविधानवाद गणतांत्रिक संविधानों की प्रस्थापना से पुनःस्थापित होने लगा, वहीं पूर्वी यूरोप में राजनीतिक संविधानवाद के दृष्टिकोण से परिस्थिति और भी अन्धकारपूर्ण बन गए। आज का राष्ट्रीय लोकतंत्रात्मक संविधानवाद, सुनिश्चित और सुस्थिर रूप धारण नहीं कर सका है। वह अब भी परीक्षण और अस्थिरता की अवस्था में चल रहा है। 1950 ई० के बाद के दशाब्दियों में अनेक राजनीतिक समाजों का स्वतंत्र राज्यों के रूप में उदय और उनमें तेजी से होनेवाली उथल-पुथल ने, संविधानवाद के भविष्य के संबंध में आशंकाएँ पैदा कर दी है। साम्यवाद और सैनिकवाद का जिस गति से एशिया, अफ्रीका तथा लातीनी अमेरिका में प्रसार हो रहा है, उससे संविधानवाद के भविष्य के आगे प्रश्नचिन्ह (?) खड़ा हो जाता है। अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों में संविधानवाद की जड़ें गहरी हैं। अन्य समाजों में भी संविधानवाद बाधाओं और रुकावटों को दूर करने की दिशा में प्रयत्नशील है। क्योंकि इन समाजों में प्रतिस्थापित निरंकुश व्यवस्थाएँ संवैधानिक शासन की ओर अग्रसर हैं।

1.8 संविधानवाद की समस्याएँ एवं समाधान के उपाय (Problems of Constitutionalism and methods for the remedy)

आज विश्व के प्रायः अधिकांश देशों की शासन व्यवस्थाएँ संविधानवाद के नियमों पर संचालित हो रही हैं। मानवीय मूल्यों, आदर्शों व आस्थाओं पर टिका संविधानवाद, आज अपने विकास के उन्नत अवस्था में पहुँच गया है। मानव अधिकारों के समर्थक इतने हैं कि इस व्यवस्था के नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता; तथापि संविधानवाद का मार्ग कंटकमुक्त भी नहीं है। आज विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर इतने उतार-चढ़ाव हो रहे हैं कि, यदा-कदा ऐसा लगता है कि संविधान खतरे में है। आज विश्व के अनेक देशों खासकर तृतीय विश्व के देशों में सैनिक शासन की स्थापना हुई है, साथ ही, कुछ देशों में किसी व्यक्ति विशेष की तानाशाही देखने को मिल रही हैं। ये शक्तियाँ सांविधानिक सरकार के परिचालन के विरुद्ध कार्य करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की धुन के रूप में संविधानवाद की संकल्पना में हमारी आस्था को ही डिगा देती है। आज संविधानवाद को अनेक समस्याओं से रू-ब-रू होना पड़ रहा है। ये समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

1. युद्ध–युद्ध संविधानवाद की सबसे बड़ी समस्या है, युद्ध की स्थिति में **सांविधानिक राज्य की संरचनात्मक स्थिति में परिवर्तन आ जाता है।** युद्ध के काल में ही उत्पन्न संकट का मुकाबला करने के लिए, सरकार पूर्ण और निरपेक्ष शक्ति का दावा करती है और विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करने के नाम पर लोगों की आवश्यक स्वतंत्रताओं को कुचलने की सीमा तक चली जाती है। वस्तुतः युद्धकाल के दौरान सांविधानिक सरकार का ढाँचा नष्ट हो जाता है। अतः जब तक यह स्थिति रहेगी, तब तक किसी भी राज्य में सांविधानिक शासन पूर्ण रूप से स्थापित न हो सकेगा।

2. आन्तरिक आपात अथवा संकटकालीन व्यवस्थाएँ–सांविधानिक सरकार का निलम्बन तभी न्यायोचित ठहराया जा सकता है, जबतक वस्तुतः संकटकालीन अवस्थाएँ हों। ऐसी स्थिति में संविधानवाद के नष्ट होने या कमजोर होने का भय बना रहता है।

आपातकाल का मुकाबला करने के लिए संविधान में विशेष व्यवस्थाएँ की जाती है, जिस के अनुसार, संविधान के मूल-स्वरूप को नष्ट किए बिना, सरकार असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। संविधान में ऐसे प्रावधान इसलिए किए जाते हैं, जिससे कि संविधानवाद की रूपरेखा समाप्त न हो और आपातकाल की समाप्ति के बाद संविधान पुनः सामान्य स्थिति में आ जाए। इस प्रकार के प्रावधान के बावजूद आपातकालीन शक्तियों के कारण संविधानवाद के तत्वों को नष्ट होने की पूरी आशंका रहती है।

3. सामाजिक आर्थिक संकटों का मुकाबला–कभी-कभी किसी देश में सरकार को सामाजिक-आर्थिक विपन्नता दूर करने के लिए असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है। इसके लिए कभी-कभी सांविधानिक नियमों एवं सिद्धान्तों की उपेक्षा करनी पड़ती है। जैसे–अमेरिका की **'न्यू डील योजना'** के तहत कार्यपालिका द्वारा असाधारण शक्तियों का प्रयोग आर्थिक संकट को दूर करने के लिए किया गया था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत, आर्थिक संकट का मुकाबला करने के लिए कार्यपालिका को विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं।

4. आधुनिक संविधान की मुख्य समस्या ऐसी सांविधानिक संरचनाओं का पता लगाना है, जो जनसाधारण और विभिन्न वर्गों के हितों में सामंजस्य स्थापित करने का साधन बन सके और समाज के बदलते हुए मूल्यों, माँगों और आकांक्षाओं की पूर्ति में योग दे सके। हम विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में विभिन्न सांविधानिक संरचनाओं को इस दृष्टि से परखना चाहते हैं कि, वे एक नई समाजिक व्यवस्था की स्थापना में कितनी कुशल सिद्ध होंगी।

5. इसकी एक मुख्य समस्या यह भी है कि सांविधानिक संरचनाओं को आधुनिक समाज के महान साध्यों की सिद्धि का साधन कैसे बनाया जाए ? अब हमें इस बात में विशेष दिलचस्पी नहीं रहती कि किसी देश के संविधान में क्या लिखा है ? हम राजनीति को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहते हैं।

6. एकदलीय पद्धति–लोकतंत्र की सफलता के लिए यदि दल पद्धति आवश्यक है, तो संविधानवाद की रक्षा के लिए दो राजनीतिक पार्टियों का होना अत्यावश्यक है। एकदलीय पद्धति स्वेच्छाचारिता का प्रतीक है। एकदलीय राजनीतिक प्रवृत्ति में सत्तारूढ़ दल मनमानी करने लगता है।

7. संस्थागत समस्या–संविधानवाद की सम्भवतया सबसे बड़ी समस्या इसकी आधुनिक संसदीय प्रणाली की क्रियाशीलता और गतिशीलता को लेकर है। आर्थिक महत्व के विषय आधुनिक राज्य के लिए अधिक आवश्यक हो गये हैं, जो संसदीय प्रणाली को केन्द्रीय प्रभुता के ढाँचे में सफलतापूर्वक हल नहीं किये जा सकते।

8. समाजवाद और अंन्तरराष्ट्रवाद–संविधानवाद के लिए समाजवाद और अंतरराष्ट्रवाद भी कभी-कभी समस्या के रूप में उपस्थित होते हैं। यद्यपि विचारकों के मत में समाजवाद और अन्तरराष्ट्रवाद से संविधानवाद को खतरा नहीं है, तथापि कभी-कभी इसके कारण संविधानवाद का विकास अवरुद्ध होता पाया गया है।

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त संविधानवाद के सम्मुख और भी अनेक समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं। विकासशील देशों का राजनीतिक उथल-पुथल तथा अन्य समस्याएँ संविधानवाद के लिए गम्भीर चुनौती प्रस्तुत करती है। इसके कारण कभी-कभी संविधानवाद का भविष्य अंधकारमय दीख पड़ता है।

संविधानवाद की समस्याओं का समाधान–ऐसे प्रसंग में महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन गम्भीर समस्याओं को कैसे सुलझाया जाए ?'' या संविधानवाद के लिए क्या दृष्टिकोण होना चाहिए ? **प्रो. सी. एफ. स्ट्राँग** ने उपर्युक्त समस्याओं के हल के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. सुदृढ़ शासन–समाज को अराजकता तथा अव्यवस्था से बचाने के लिए एक सुदृढ़ शक्ति से युक्त राज्य का होना आवश्यक है। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि कोई व्यक्ति विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का लाभ उठाकर अराजकता तो नहीं फैला रहा है।

2. योग्य शासन–शासक को शासन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक संविधानवाद में सम्प्रभुता जनता में निहित होती है, अतः शासक को सदैव ही नियमानुसार जनता के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

3. बुद्धिमत्तापूर्ण शासन–संविधानवाद को जीवित रखने के लिए आवश्यक है कि समाज का बहुत बड़ा भाग शासन में रुचि ले। बुद्धिजीवियों को भी इस बात का आभास कराया जाये कि, वे भावी राजनीति के स्वयं निर्माता हैं तथा शासन के तीनों अंगों का प्रजातांत्रिक ढंग से संगठन किया जाना चाहिए और नागरिकों के मौलिक अधिकारों को किसी प्रकार की चोट नहीं पहुँचनी चाहिए।

4. प्रशासन संबंधी सुधार अथवा संघवाद का प्रश्रय–संविधानवाद के विकास एवं सुरक्षा के लिए संघात्मक शासन व्यवस्था ज्यादा अनुकूल सिद्ध हो सकती है। संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता तथा क्षेत्रीय स्वायत्तता का समन्वय होता है। इसलिए संविधानवाद को संघवाद को प्रश्रय देना चाहिए। एकात्मक शासन व्यवस्था में प्रशासन की समस्यायें भी संविधानवाद के लिए एक खतरा है। जहाँ एकात्मक शासन व्यवस्थाएँ हैं, वहाँ भी सत्ता को अधिक से अधिक विकेंद्रित किया जाए, जिससे राजनीतिक शक्तियाँ एक बिन्दु पर संग्रहीत न हो जाएँ। **प्रो. स्ट्राँग** का सुझाव है कि, एकात्मक राज्य भी संघवाद की योजना की तरह अपने छोटे राजनीतिक निकायों में, शक्तियों को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार के साथ वही शक्तियाँ रह जाएँ जो सम्पूर्ण देश के सामान्य हित के लिए आवश्यक हों।

5. अंतरराष्ट्रीय संगठन का निर्माण–प्रो. स्ट्राँग के विचार में, ''अंतरराष्ट्रीय संगठन राजनीतिक संविधानवाद की निरन्तर सुरक्षा की आवश्यक शर्त है।'' यह संविधानवाद के हित में होगा यदि यह अन्तरराष्ट्रवाद के मुख्य सिद्धान्तों को अपने-आप में समाहित कर ले या उनके साथ सुनिश्चित ढंग से समायोजन करें। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय संगठन से ही अंतरराष्ट्रीय अराजकता से बचा जा सकता है।

6. आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता–संविधानवाद को राष्ट्रीय स्तर पर आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता देनी चाहिए। यदि यह मान्यता न होगी तो विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और राज्य के बँटवारे की आशंका हो सकती है। बंगलादेश का निर्माण इस अभाव का प्रतिफल कहा जा सकता है। केवल राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को भी मान्यता दे देने से समस्या का निदान नहीं हो जाएगा। कभी-कभी छोटे-छोटे राष्ट्रीय समूह पृथकतावादी आन्दोलन कर राष्ट्रीय एकता की नींव को कमजोर कर देते हैं। **पंजाब में अकाली आन्दोलन, मिजोरम में मिजोफ्रंट द्वारा** आन्दोलन पृथकतावादी आन्दोलन के उदाहरण हैं। इसके लिए राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता है।

7. लोकतांत्रिक मॉडेल की स्थापना–स्वेच्छाचारी या सर्वाधिकारी सरकार संविधानवाद का शत्रु है। संविधानवाद के पोषण एवं विकास के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत लोकतंत्रात्मक मॉडेल अपनाया जाए। संविधानवाद में इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए। जितना अधिक लोकतांत्रिक तत्वों को प्रश्रय दिया जाएगा, सर्वाधिकारवाद का भय उतना ही कम होगा। यह आवश्यक है कि लोगों में विश्वास दिलाया जाए कि, राज्य का महत्वपूर्ण निर्णय लेने में वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहभागी हैं। इसके लिए विधायिका में प्रतिनिधित्व का विस्तार, लोक-निर्णय, प्रारंभण आदि पद्धतियों को यथासम्भव बड़े पैमाने पर लागू करने का प्रयास किया जाना उचित होगा।

समीक्षा–उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक संविधानवाद की अनेक समस्याएँ हैं, किन्तु उनका समाधान सरलता से किया जा सकता है। इस संदर्भ में आधुनिक राष्ट्र–राज्यों की क्रिया-प्रणाली और संयुक्त राष्ट्रसंघ का सफल संचालन काफी महत्वपूर्ण हो सकता है। इसके फलस्वरूप संविधानवाद का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

साथ ही, संविधानवाद की समस्याओं के निराकरण के संबंध में दो बातों पर विशेष बल देने की आवश्यकता है। प्रथम, संविधानवाद के प्रवर्तकों को इस बात पर पूरा ध्यान देना होगा कि सर्वाधिकारवादी तत्वों को रोकने के लिए हर प्रयास किया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र के प्रतिमानों को सुगठित एवं सशक्त बनाना चाहिए।

द्वितीय, इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि, संविधान में संशोधन की उचित व्यवस्था की जाए, जिससे सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ संविधान में भी आसानी से संशोधन हो सके। यदि संविधानवाद कठोरता एवं जटिलता का शिकार हो जाता है तो विद्रोह की अग्नि भड़केगी और अंततोगत्वा वह संविधानवाद के लिए खतरा बन जाएगी।

1.9 निष्कर्ष (Conclusion)

इस तरह उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, संविधानवाद आधुनिक तुलनात्मक राजनीति की प्रमुख अवधारणा है। आज प्रजातंत्र के इस युग में प्राय: सभी देश

संविधान पर आधारित व्यवस्था के आकांक्षी प्रतीत होते हैं, परन्तु इस आकांक्षा को मूर्त रूप संविधान के माध्यम से ही प्रदान किया जा सकता है। वस्तुतः संविधानवाद एक विचारधारा है, जो कुछ ऐसे मूल्यों, आदर्शों तथा आस्थाओं पर आधारित होती है, जिसे किसी राष्ट्र की जनता स्वीकार करती है। इसलिए संविधान का आधार, संविधानवाद ही प्रस्तुत करता है। अतः आज प्रायः सभी प्रकार की शासन प्रणालियों में संविधानवाद के महत्व को स्वीकार किया जा रहा है।

1.10 अभ्यास के लिए प्रश्न (Questions for Exercise)

1. संविधानवाद से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न तत्वों का परीक्षण करें। (What do you understand by Constitutionalism ? Examine its different elements.)
2. संविधानवाद के विभिन्न आधारों की समीक्षा करें। (Examine different fases of Constitutionalism.)
3. संविधानवाद और संविधान में अंतर को स्पष्ट करें। (Explain the differences between Constitutionalism and Constitution.)
4. संविधानवाद का अर्थ बतावें तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन करें। (Discuss the meaning and features of Constitutionalism.)
5. संविधानवाद की विभिन्न अवधारणाओं का समीक्षात्मक परीक्षण करें। (Examine different concepts of Constitutionalism.)

1.11 संदर्भ ग्रंथ (Surggested Readings)

1. तुलनात्मक राजनीति—एस. आर. महेश्वरी
2. तुलनात्मक शासन एवं राजनीति—गाँधीजी राय
3. तुलनात्मक राजनीति—जे. सी. जौहरी
4. तुलनात्मक राजनीति—ओ. पी. गावा
5. तुलनात्मक राजनीति—सी. बी. गेना
6. तुलनात्मक राजनीति—जैन एवं फाड़िया

■ ■ ■